रविवारीय

ई-जागृति

डिजिटल भारत में उपभोक्ता न्याय के लिए नई परिकल्पना

प्रल्हाद जोशी

न्याय में देरी, लंबे समय से भारतीय उपभोक्ताओं के लिए सबसे बड़ी निराशाओं में से एक रही है. चाहे वह खराब उत्पाद हो, ऑनलाइन खरीदी गई वस्तु का न मिल पाना हो, या अनुचित सेवा अनुबंध हो, शिकायत दर्ज करने से लेकर राहत पाने तक की प्रक्रिया अक्सर धीमी, बोझिल और डराने वाली रही है. हालांकि, भारत की उपभोक्ता संरक्षण व्यवस्था समय के साथ लगातार विकसित हुई है, लेकिन इसे समर्थन देने वाली प्रणाली तेज़ी से डिजिटल होती अर्थव्यवस्था की वास्तविकताओं के साथ कदम मिलाते हुए आगे नहीं बढ़ पायी. आज, उपभोक्ता ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म, डिजिटल भुगतान प्रणाली और ऑनलाइन बाज़ार में बड़े पैमाने पर लेन-देन करते हैं. उपभोक्ता न्याय की पारंपरिक व्यवस्था—जो भौतिक रूप से दाखिल करने, व्यक्ति द्वारा एक-एक कर जांच करने, अलग-अलग सॉफ़्टवेयर प्लेटफार्म का उपयोग करने और आमने-सामने की सुनवाई के इर्द-गिर्द बनाई गई थी—धीरे-धीरे अपर्याप्त सिद्ध होने लगी. डिजिटल युग में उपभोक्ता अधिकार सुनिश्चित करने के लिए केवल कानूनी सुधार ही पर्याप्त नहीं थे; इसके लिए न्याय देने के तरीके में पूरी तरह से बदलाव करने की ज़रूरत थी. यहीं पर ई-जागृति एक महत्वपूर्ण बदलाव लाती है. यह सिर्फ़ एक तकनीक प्लेटफ़ॉर्म नहीं है, बल्कि यह व्यवस्था के केंद्र में पहुंच, पारदर्शिता और दक्षता को रखकर उपभोक्ता विवाद समाधान के तरीके की नए सिरे से परिकल्पना करने का प्रयास है.

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019 में एक आधुनिक फ्रेमवर्क की परिकल्पना की गई थी, जो बाज़ार की उभरती वास्तविकताओं के अनुरूप काम करने में सक्षम हो. हालाँकि, कानून की भावना को प्रभावी सार्वजनिक सेवा में बदलने के लिए कई अलग-अलग पुरानी प्रणालियों को हटाकर एकीकृत डिजिटल इकोसिस्टम को अपनाने की ज़रूरत थी. पुराने प्लेटफॉर्म में एकरूपता की कमी, पुरानी संरचना, एक-दूसरे से जुड़कर काम करने की सीमित सुविधा और भौतिक प्रक्रियाओं पर अधिक निर्भरता जैसी समस्याएँ थीं. कई उपभोक्ताओं के लिए—विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग, वरिष्ठ नागरिक, दिव्यांगजन और अनिवासी भारतीय—न्याय पाने की प्रक्रिया की लागत अक्सर एक बड़ी बाधा बन जाती थी.

ई-जागृति उपभोक्ता शिकायत की पूरी प्रक्रिया को डिजिटल बनाकर इन संरचनात्मक चुनौतियों का समाधान करती है. ओटीपी आधारित पंजीकरण और ऑनलाइन दाखिल करने से लेकर डिजिटल जाँच, इलेक्ट्रॉनिक भुगतान, वर्चुअल सुनवाई, बहुभाषी आदेश और वास्तविक समय में मामले की निगरानी तक, यह प्लेटफ़ॉर्म नागरिकों को किसी भौगोलिक या प्रक्रियात्मक जटिलता की बाधा के बिना न्याय पाने में मदद करता है. ऐसे बदलाव का महत्व केवल सुविधा तक ही सीमित नहीं है. यह नागरिकों और सार्वजनिक संस्थानों के बीच रिश्ते को मौलिक रूप से बदल देता है. डिजिटल वर्कफ़्लो कागजी काम को कम करते हैं, अलग-अलग अधिकार-क्षेत्रों में प्रक्रियाओं को एक जैसा बनाते हैं, विवेकाधीन देरी को कम करते हैं और पारदर्शिता बढ़ाते हैं. मामलों की स्वचालित सूची, ऑनलाइन डैशबोर्ड और तुरंत सूचना सुनिश्चित करती है कि कानूनी प्रक्रिया के दौरान शिकायतकर्ता को हर जानकारी मिलती रहे, जिससे प्रणाली में जनता का भरोसा मजबूत होता है.

इस प्लेटफॉर्म ने न्याय को और अधिक समावेशी बनाने के लिए उभरती तकनीकों को भी अपनाया है. एआई-सहायताप्राप्त मामला विश्लेषण, वॉइस-टू-टेक्स्ट कार्यप्रणाली, टेक्स्ट-टू-स्पीच सुविधा, बहुभाषी इंटरफेस, उन्नत सर्च क्षमताएँ और पहुंच प्राप्त करने के उपकरण जैसी विशेषताओं के जरिए समाज के विभिन्न हिस्सों से अधिक लोगों की भागीदारी संभव हुई है. इतना ही नहीं, राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग और राज्य उपभोक्ता आयोगों में हाइब्रिड वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सुविधाओं का देशभर में लागू होना भी उतना ही अहम रहा है, जिससे वर्चुअल सुनवाई उपभोक्ता न्याय दिलाने की प्रक्रिया का एक ज़रूरी हिस्सा बन गई है. दूरदराज के जिलों या विदेशों में रहने वाले नागरिकों के लिए, इससे कानूनी लड़ाई की वित्तीय और लॉजिस्टिक लागत दोनों काफी हद तक कम हो गई हैं. फिर भी, इस स्तर के तकनीकी बदलाव में चुनौतियाँ हमेशा मौजूद रहती हैं. डिजिटल सुधार अक्सर संस्थानों को स्थापित प्रथाओं पर फिर से सोचने के लिए मजबूर करते हैं और उपयोगकर्ताओं को अपरिचित प्रणाली अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं. ई-जागृति की शुरुआत के दौरान, डेटा स्थानान्तरण, भुगतान गेटवे एकीकरण, इंटरफेस की उपयोगिता और लंबे समय से चल रहे मैनुअल प्रक्रियाओं में बदलाव को लेकर चिंताएँ उभरीं. कानूनी पेशेवरों और अन्य हितधारकों के कुछ हिस्सों ने नई डिजिटल व्यवस्था को अपनाते समय कुछ चिंताएँ जाहिर कीं.

इन चिंताओं को बाधा मानने की बजाय, कार्यान्वयन प्रक्रिया ने उन्हें निरंतर सुधार के मौकों के तौर पर देखा. उपभोक्ता आयोगों, कानूनी पेशेवरों, तकनीकी विशेषज्ञों और राज्य सरकारों के साथ व्यापक परामर्श से इस प्लेटफ़ॉर्म को बेहतर बनाने में मदद मिली. नियमित क्षमता निर्माण कार्यक्रम, क्षेत्रीय कार्यशालाएं, वर्चुअल प्रशिक्षण सत्र, साप्ताहिक शिकायत निवारण संवाद और लगातार तकनीकी समर्थन से हितधारकों का नई प्रणाली में धीरे-धीरे भरोसा बढ़ा. इस अनुभव से एक महत्वपूर्ण सबक मिला-डिजिटल परिवर्तन केवल इसलिए सफल नहीं होता कि तकनीक लागू की गई है, बल्कि इसलिए सफल होता है क्योंकि संस्थाएं उपयोगकर्ता की प्रतिक्रिया के प्रति संवेदनशील रहती हैं और निरंतर सुधार के लिए प्रतिबद्ध रहती हैं. शुरुआती परिणाम उत्साहवर्धक हैं. थोड़े ही समय में, ई-जागृति ने लाखों उपभोक्ताओं को एक साझा डिजिटल प्लेटफॉर्म पर ला दिया है, दो लाख से अधिक मामलों के दाखिले की सुविधा दी है, उच्च समाधान दर हासिल की है और साठ से अधिक देशों के उपभोक्ताओं को भारत के उपभोक्ता विवाद निवारण व्यवस्था तक पहुंचने में सक्षम बनाया है. मानकीकृत डिजिटल वर्कफ़्लो ने दक्षता में सुधार किया है और उन प्रक्रियात्मक अड़चनों को कम किया है, जो पहले की प्रणाली की विशेषता थीं. राष्ट्रीय ई-शासन पुरस्कार 2026 में रजत पुरस्कार के माध्यम से मान्यता, न केवल एक संस्थागत उपलब्धि के रूप में, बल्कि सरकारी प्रक्रिया की सफल पुन: डिज़ाइन की स्वीकृति के रूप में महत्वपूर्ण है. यह पुरस्कार इस बात को मान्यता देता है कि सार्थक डिजिटल शासन केवल मौजूदा प्रक्रियाओं को कंप्यूटरीकृत करने के बारे में नहीं है; यह उन्हें सरल, तेज़ और नागरिक-केंद्रित बनाने के लिए फिर से डिज़ाइन करने के बारे में है.

भारत की व्यापक डिजिटल इंडिया यात्रा ने दिखाया है कि जब मजबूत संस्थागत प्रतिबद्धता हो, तो तकनीक सार्वजनिक सेवा अदायगी को बदल सकती है. डिजिटल पहचान और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण से लेकर ऑनलाइन कराधान और स्वास्थ्य देखभाल प्लेटफार्मों तक, देश ने शासन में तकनीक की भूमिका का लगातार विस्तार किया है. अब उपभोक्ता न्याय भी उन क्षेत्रों की सूची में शामिल हो गया है, जिसमें संरचनात्मक डिजिटल सुधार हो रहे हैं.

> ई-जागृति की सफलता भविष्य के शासन सुधारों के लिए भी महत्वपूर्ण सबक देती है. डिजिटल प्लेटफार्मों को संस्थाओं के बजाय नागरिकों को ध्यान में रखकर डिजाइन किया जाना चाहिए. पहुंच को बाद में सोची जाने वाली बात के बजाय एक मूल सिद्धांत के रूप में लिया जाना चाहिए. कृत्रिम बुद्धिमत्ता को निष्पक्षता से समझौता किए बिना पारदर्शिता और कुशलता बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए. सबसे बढ़कर, तकनीक को न्याय को सरल बनाना चाहिए, न कि उसमें जटिलता की नई परतें जोड़नी चाहिए. जैसे-जैसे भारत की डिजिटल अर्थव्यवस्था बढ़ती जा रही है, उपभोक्ता का विश्वास उन संस्थाओं की विश्वसनीयता पर अधिक निर्भर करेगा, जो उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा करती हैं. प्रभावी विवाद समाधान अब केवल एक प्रशासनिक उद्देश्य नहीं रहा; यह एक आर्थिक आवश्यकता बन गया है, जो बाजारों में भरोसे को मजबूत करता है और जिम्मेदार व्यावसायिक प्रथाओं को बढ़ावा देता है. ई-जागृति प्लेटफार्म दिखाता है कि सोच-समझकर किया गया डिजिटल बदलाव कानूनी इरादे और नागरिक अनुभव के अंतर को कम कर सकता है. उपभोक्ता न्याय को तेज़, अधिक पारदर्शी और अधिक समावेशी बनाकर, यह एक सरल लेकिन शक्तिशाली सिद्धांत को मजबूत करता है—कि डिजिटल लोकतंत्र में, न्याय तक पहुंच भी सेवा तक पहुंच जितनी ही सहज होनी चाहिए. यही शायद इक्कीसवीं सदी में ग्राहक देवो भव का सबसे सार्थक रूप है.

(लेखक केंद्रीय नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा तथा उपभोक्ता कार्य, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्री हैं.)

व्यंग्य

खरबूजे भी रंग बदलने लगे ...

रवि उपाध्याय
(लेखक व्यंगकार और राजनीतिक समीक्षक हैं)

गर्मी का मौसम है.बाजार में तरबूजों और खरबूजों की भरमार है. यह कहावत है कि तरबूज़ को देख कर खरबूजा भी रंग बदलता है. ऐसा ही कुछ इन दिनों देश की सियासत में देखने को मिल रहा है. बंगाल के तरबूजों की तरह अन्य राज्यों के खरबूज भी रंग बदलने लगे हैं. इन्हीं की तरह सांसद और विधायक भी रंग बदलने लगे. जहां तक रंग बदलने की बात है तो इस काम में गिरगिट को विशेष महारत हासिल मानी जाती थी. लेकिन नेताओं और इंसानों ने इस मामले में गिरगिटों को भी धता बता कर अपनी बहादुरी का लोहा मनवा दिया है. नेताओं की रंग बदलने में महारत को देख कर गिरगिट खुद शर्मिंदा हो कर शहरों से पलायन कर गए हैं.

रंग बदलने का यह सिलसिला इस बार भारत के पूरब के राज्य पश्चिम बंगाल से शुरू हुआ. इस राज्य में 15 साल पहले भी इसी तरह की रंग परिवर्तन की घटनाएं तब हुई थी जब सत्ता सिंहासन परिवर्तन के साथ लाल रंग हरे रंग में रंग गया था. पश्चिम बंगाल से रंग परिवर्तन की हवा ऐसी चली कि यह हवा मानसून से भी तेजी से पूरे देश में सुनामी या यों कहिए कि कुनामी की तरह फैल गई. पार्टियों को यह पश्चिम बंगाल की, घटना या कहिए वारदात मौका -मौका लगने लगी. तृणमूल और दो फूल के बागवान,दोनों फूल तोड़ कर नौ- दो- ग्यारह हो गए और तृण को मूल से उन्मूलन कर भारत माता की जय और वंदेमातरम कह कर अपना अलग से आशियां बनाने में चलते बने . ऋतव्रत ने निर्ममता से ममता का दामन छोड़ कर अपना नया आशियां बसा लिया. पश्चिम बंगाल की जनता ने भी सत्ता बदलते ही क्रांति की मशाल थाम ली. जगह जगह भ्रष्टाचारियों कटमनी वसूलने वालों और तोलाबाजों का नागरिक अभिनंदन और अंडा अभिषेक किया जाने लगा. वहां की मुर्गियों ने भी इस अंडा अभिषेक से उत्साहित हो कर धड़ाधड़ अंडे देना शुरू कर दिया. मुर्गियों के लिए भी यह राज्य की अवाम की सेवा करने का फर्स्ट सुअवसर था.उन्होंने अपना फर्ज बखूबी निभाया. नेताओं को टमाटर मारे जाने लगे. शायद यही कारण है कि देश में टमाटर के भाव भी आसमान पर जा पहुंचे. हम एक लंबे अरसे से यह सुनते आए हैं कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है. इस कहावत का यदि कहीं साकार रूप देखना हो तो वह पश्चिम बंगाल की धरती पर देखा जा सकता है.

अभी तक जलाभिषेक दुग्धाभिषेक होते रहे हैं परंतु इस दिशा में पश्चिम बंगाल में अंडा अभिषेक का अभिनव प्रयोग किया जा रहा है. इसके साथ ही पश्चिम बंगाल में हेलमेट पर अभिनव प्रयोग किया गया है. जब भाईपा यानि अभिषेक बनर्जी का क्रांतिकारियों की सरजमीं पर अंडा अभिषेक होने लगा तो अंडा रस से बचाने के लिए उन्हें हेलमेट पहनाने का जो अभिनव प्रयोग किया गया वह दुनिया में सबसे पहले किया जाने वाला एक इनोवेटिव आइडिया है.गिनीज़ बुक ऑफ वर्लड रिकॉर्ड वालों से निवेदन है कि इस आइडिया को वर्लड रिकॉर्ड में शामिल करें. इसअभिनव खोज के बाद तो पश्चिम बंगाल में पैदल चलने वाले नेता भी हेलमेट लगाने लगे हैं. इसका बहुमुखी लाभ हुआ है. जहां एक तरफ पश्चिम बंगाल में हेलमेटों की बिक्री और उत्पादन तेजी से बढ़ा होगा. हेलमेट का उत्पादन बढ़ने से राज्य में रोजगार के नए अवसर बने हैं.

विवाह : पवित्र बंधन, लेकिन सम्मान और सुरक्षा सर्वोपरि

डॉ. वेदना गांधी

> स्पष्ट है कि समाधान केवल कानूनी दंड में नहीं बल्कि सामाजिक और पारिवारिक परिवर्तन में निहित है. विवाह संस्था को मजबूत बनाए रखना आवश्यक है, क्योंकि यह हमारे समाज की आधारशिला है. किंतु यह तभी संभव है जब इसमें प्रेम, सम्मान, समानता और सुरक्षा का समावेश हो. आज आवश्यकता है कि विवाह को केवल एक परंपरा नहीं बल्कि एक जिम्मेदारी के रूप में देखा जाए, जिसमें दोनों पक्षों का सम्मान और सुरक्षा सुनिश्चित हो. तभी हम उन असंख्य बेटियों को सच्ची श्रद्धांजलि दे पाएंगे जिनकी आवाजें अब हमारे बीच नहीं हैं.

भोपाल की रिया, ग्वालियर की पलक, दिल्ली की दीपिका जैसी लगभग 7 हजार बेटियाँ हर साल दहेज उत्पीड़न के कारण युवावस्था में ही मृत्यु के मुहाने पर पहुँच रही हैं. हाल के दिनों में ऐसी कई दर्दनाक घटनाओं ने पूरे समाज को झकझोर कर रख दिया है. कुछ मामलों में युवती लड़कियों की मृत्यु हो गई तो कुछ मामलों में उन्हें ऐसी मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहनी पड़ीं जिनकी कल्पना भी कठिन है. ये घटनाएँ केवल कानूनी अपराध नहीं हैं बल्कि हमारे सामाजिक ताने-बाने, पारिवारिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं पर भी गंभीर प्रश्नचिह्न लगाती हैं.

भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं माना गया है. इसे सोलह संस्कारों में से एक महत्वपूर्ण और पवित्र संस्कार का स्थान प्राप्त है. विवाह दो परिवारों, दो संस्कृतियों और अनेक सामाजिक संबंधों को जोड़ने वाला पावन बंधन है. यही कारण है कि विवाह संस्था को बनाए रखना और उसे सुदृढ़ करना समाज का साझा दायित्व है. इसके साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि किसी भी विवाह या परिवार की रक्षा किसी बेटी के आत्मसम्मान, सुरक्षा अथवा जीवन की कीमत पर नहीं की जा सकती.

अक्सर यह देखा गया है कि विवाह के बाद जब बेटी अपनी पीड़ा माता-पिता से साझा करती है, तो उसे धैर्य रखने, समझौता करने या 'सब ठीक हो जाएगा' की सलाह देकर पुन: ससुराल भेज दिया जाता है. कई बार माता-पिता का यह निर्णय उनकी सामाजिक स्थिति, रिश्तों के टूटने के भय या समाज में होने वाले आकलन से प्रभावित होता है. वे अपनी बेटी के दांपत्य जीवन को बचाने के उद्देश्य से ऐसा करते हैं, किंतु यदि प्रताड़ना लगातार जारी है, हिंसा बढ़ रही है और बेटी स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रही है, तो केवल धैर्य और समझाइश पर्याप्त नहीं होती. ऐसे समय में परिवार का दायित्व है कि वह स्थिति की गंभीरता को समझे और समय रहते उचित हस्तक्षेप करे. विवाह को बचाने का प्रयास आवश्यक है, किंतु बेटी की सुरक्षा और उसका जीवन उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है.

यह समस्या केवल कानूनों के माध्यम से समाप्त नहीं हो सकती. कानून जरूरी हैं, वे अपराधियों को दंड देते हैं, परंतु वे समाज की जड़ मानसिकता को नहीं बदल सकते. दहेज जैसी कुप्रथा का मूल उस सोच में है जो विवाह को एक आर्थिक लेन-देन के रूप में देखती है. जब तक समाज में दहेज को प्रतिष्ठा, हैसियत या अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाता रहेगा, तब तक यह समस्या समाप्त नहीं होगी. हमें अपने परिवारों और बच्चों में यह संस्कार विकसित करना होगा कि विवाह साझेदारी का संबंध है, न कि किसी प्रकार का सौदा. विवाह के बाद दंपत्ति को भावनात्मक सहयोग प्रदान करना भी आवश्यक है. आज की भागदौड़ भरी जीवनशैली में कई बार छोटे-छोटे मतभेद बड़े विवादों का रूप ले लेते हैं. ऐसे में दोनों परिवारों के वरिष्ठ सदस्य, रिश्तेदार और समाज के जिम्मेदार लोग मध्यस्थ की भूमिका निभा सकते हैं.

भारतीय समाज की विशेषता रही है कि पहले अधिकांश विवाह परिचित परिवारों और सामाजिक दायरे में होते थे. रिश्ते तय करने में केवल माता-पिता ही नहीं बल्कि रिश्तेदार, पड़ोसी और समाज के वरिष्ठ लोग भी शामिल होते थे. परिणामस्वरूप विवाह के बाद यदि कोई समस्या उत्पन्न होती थी तो उसका समाधान भी सामूहिक रूप से किया जाता था. सामाजिक निगरानी और नैतिक दबाव के कारण अत्याचार की संभावना अपेक्षाकृत कम रहती थी.

आंकड़े इस समस्या की गंभीरता को स्पष्ट करते हैं. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार देश में प्रतिदिन औसतन 16 महिलाओं की जान दहेज से जुड़े कारणों से जाती है. वर्ष 2023 में 6,156 और वर्ष 2024 में 5,737 दहेज से संबंधित मौतें दर्ज की गईं. वर्ष 2017 में यह आंकड़ा 7,466 तक पहुँच गया था. ये केवल दर्ज मामले हैं, वास्तविक स्थिति इससे कहीं अधिक गंभीर है.

(लेखिका: शिक्षाविद्, समाजशास्त्री एवं कथाकार)

'भारतीय राजनीति में चुनाव केवल सरकारें नहीं बदलते, वे राजनीतिक भूगोल भी बदल देते हैं. 1977 का लोकसभा चुनाव ऐसा ही ऐतिहासिक मोड़ था, जब आपातकाल के बाद कांग्रेस उत्तर भारत में लगभग धराशायी हो गई और पहली बार उसकी अजेय सत्ता का मिथक टूट गया. उस दौर में जब राजनीतिक विश्लेषक कांग्रेस के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगा रहे थे, तब दक्षिण भारत ने उसके लिए उम्मीद का दीप जलाए रखा. यही आधार कुछ वर्षों बाद इंदिरा गांधी की वापसी की सबसे बड़ी ताकत बना. लगभग पांच दशक बाद, जब कांग्रेस एक बार फिर उत्तर भारत में अपनी खोई हुई जमीन तलाश रही है, तब इतिहास जैसे स्वयं को दोहराता दिखाई देता है.

जब भी कांग्रेस डगमगाई दक्षिण ने दिया सहारा

श्याम यादव
(राजनीतिक लेखक / टिप्पणीकार)

सन् 1977 में जब लोकसभा चुनाव के नतीजे आए तो ऐसा लगा कि कांग्रेस का वह राजनीतिक वटवृक्ष, जिसने स्वतंत्र भारत की राजनीति पर तीन दशक तक छाया की तरह प्रभाव बनाए रखा था, अचानक धराशायी हो गया है. उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों में पार्टी पराजित हो चुकी थी और इंदिरा गांधी के राजनीतिक भविष्य पर भी प्रश्नचिह्न लगने लगे थे. लेकिन उसी समय दक्षिण भारत ने कांग्रेस के लिए उम्मीद का एक दरवाजा खुला रखा. यही वह राजनीतिक आधार था, जिसने कुछ वर्षों बाद इंदिरा गांधी की वापसी की जमीन तैयार की.

भारतीय राजनीति में कांग्रेस और दक्षिण भारत का संबंध नया नहीं है. कांग्रेस संगठन के सबसे प्रभावशाली नेताओं में रहे के. कामराज दक्षिण भारत से आते थे. 1969 में कांग्रेस के विभाजन के समय भी दक्षिण भारतीय नेतृत्व राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में था. हालांकि उस दौर की परिस्थितियां अलग थीं, लेकिन इससे यह स्पष्ट होता है कि कांग्रेस की जड़ें केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं थीं. आपातकाल के बाद जब कांग्रेस सत्ता से बाहर हुई, तब उत्तर भारत में उसका जनाधार तेजी से खिसक गया. उस समय कर्नाटक और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में कांग्रेस की मौजूदगी ने पार्टी को पूरी तरह बिखरने नहीं दिया. राजनीति में कई बार हार से अधिक महत्वपूर्ण यह होता है कि कठिन समय में आपके साथ कौन खड़ा रहता है. कांग्रेस के लिए उस समय दक्षिण भारत ने यही भूमिका निभाई. करीब पांच दशक बाद परिस्थितियां बदल चुकी हैं, चेहरे बदल चुके हैं, लेकिन कांग्रेस और दक्षिण भारत के रिश्ते का महत्व कम नहीं हुआ है. उत्तर भारत के अनेक राज्यों में कांग्रेस लगातार कमजोर हुई है. कई राज्यों में उसका संगठन सिमटा है और चुनावी आधार भी घटा है. इसके विपरीत दक्षिण भारत आज भी उसके लिए सबसे मजबूत राजनीतिक क्षेत्र बना हुआ है.

राहुल गांधी की राजनीति इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं. 2019 में अमेठी से पराजय के बाद वायनाड ने उन्हें लोकसभा तक पहुंचाया. यह केवल एक संसदीय सीट की जीत नहीं थी, बल्कि उस राजनीतिक विश्वास का संकेत भी था, जो दक्षिण भारत ने कांग्रेस के नेतृत्व में व्यक्त किया. इंदिरा गांधी के कठिन दौर और राहुल गांधी के संघर्षकाल के बीच लगभग पांच दशक का अंतर है, लेकिन दोनों प्रसंगों में दक्षिण भारत की भूमिका उल्लेखनीय दिखाई देती है.आज कर्नाटक में कांग्रेस की सरकार है. तेलंगाना में उसने सत्ता हासिल की है. केरल में वह प्रमुख राजनीतिक शक्ति बनी हुई है और तमिलनाडु में उसका गठबंधन उसे लगातार राजनीतिक प्रासंगिकता प्रदान करता है. ऐसे समय में जब पार्टी उत्तर भारत में अपनी खोई हुई जमीन तलाश रही है, दक्षिण उसके लिए तैयार राजनीतिक आधार के रूप में मौजूद है.

राजनीति में भूगोल कई बार विचारधारा से भी बड़ा साबित होता है. कांग्रेस के लिए दक्षिण भारत केवल कुछ राज्यों का समूह नहीं रहा, बल्कि वह ऐसा क्षेत्र रहा है जिसने कठिन समय में पार्टी को सांस लेने की जगह दी है. जब उत्तर भारत में राजनीतिक दरवाजे बंद होते दिखाई दिए, तब दक्षिण ने अपनी खिड़कियां पूरी तरह बंद नहीं कीं. दिल्ली भारतीय सत्ता का केंद्र अवश्य है, लेकिन राजनीतिक पुनरुत्थान की शुरुआत हमेशा दिल्ली से ही हो, यह आवश्यक नहीं. इंदिरा गांधी के समय भी ऐसा नहीं हुआ था और राहुल गांधी के दौर में भी परिस्थितियां कुछ वैसी ही दिखाई देती हैं.

खामेनेई युग के बाद ईरान में विरासत,नेतृत्व और नई चुनौतियां

डॉ. ब्रह्मदीप अलूने
(अंतर्राष्ट्रीय मामलों के विशेषज्ञ)

इतिहास किसी भी राजनेता का मूल्यांकन उसके जीवनकाल में लिए गए निर्णयों, किए गए कार्यों और उनके दीर्घकालिक परिणामों के आधार पर करता है. किसी नेता की वास्तविक विरासत उसके पद, व्यक्तित्व या लोकप्रियता से नहीं, बल्कि इस बात से निर्धारित होती है कि उसने अपने देश, समाज और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पर कितना स्थायी प्रभाव छोड़ा. अयातुल्लाह अली ख़ामेनेई के साथ भी यही स्थिति है.

चार दशकों से अधिक समय तक ईरान के सर्वोच्च नेता के रूप में उन्होंने ईरान की राजनीतिक और वैचारिक दिशा तय करते हुए पश्चिम एशिया की भू-राजनीति, ईरान के परमाणु कार्यक्रम, अमेरिका और इज़राइल के साथ संबंधों तथा प्रतिरोध की धुरी की रणनीति को गहराई से प्रभावित किया. ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्लाह अली ख़ामेनेई की अंतिम बिदाई में दुनिया भर की कई हस्तियां तेहरान पहुंच रही है. शियाओं के सबसे बड़े धर्मगुरु ने चार दशकों तक ईरान की सर्वोच्च सत्ता पर रहकर ईरान की आंतरिक तथा बाहरी नीतियों पर इतनी गहरी छाप छोड़ी. लेकिन अब यह बड़ा सवाल है की क्या मोजतबा ख़ामेनेई इस विरासत को आगे ले जा पाएंगे. इससे ही ईरान का भविष्य भी तय होगा.

1989 में अयातुल्लाह रुहोल्लाह खुमैनी के निधन के बाद जब अयातुल्लाह अली खामेनेई ने सर्वोच्च नेता का पद संभाला, तब बहुत कम लोगों ने अनुमान लगाया था कि उनका कार्यकाल लगभग चार दशकों तक चलेगा और ईरान की आंतरिक तथा बाहरी नीतियों पर इतनी गहरी छाप छोड़ेगा. ख़ामेनेई के नेतृत्व की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने इस्लामी क्रांति की वैचारिक निरंतरता बनाए रखी. उन्होंने विलायत-ए-फ़क़ीह की अवधारणा को केवल संवैधानिक व्यवस्था तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे ईरानी राष्ट्रवाद, धार्मिक पहचान और राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ जोड़ दिया. उनके नेतृत्व में सर्वोच्च नेता का पद ईरान की वास्तविक सत्ता का केंद्र बन गया, जबकि राष्ट्रपति और संसद जैसी निर्वाचित संस्थाएँ अपेक्षाकृत सीमित भूमिका में रहीं.

सुरक्षा और रक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता. उन्होंने इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड कॉर्प्स को एक सैन्य संगठन के साथ उसे आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली संस्था में परिवर्तित कर दिया. मिसाइल तकनीक, ड्रोन निर्माण, साइबर क्षमता तथा रक्षा उद्योग में ईरान की आत्मनिर्भरता का अधिकांश श्रेय उनके नेतृत्व को दिया जाता है. अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों और तकनीकी अवरोधों के बावजूद ईरान ने स्वदेशी रक्षा क्षमता विकसित की, जिसने उसे पश्चिम एशिया की एक प्रमुख सैन्य शक्ति के रूप में स्थापित किया.

> मोजत्बा ख़ामेनेई के सामने सबसे बड़ी चुनौती खाड़ी देशों के साथ विश्वास बहाल करने की होगी. केवल वैचारिक दृढ़ता या सैन्य शक्ति के सहारे ईरान अपने क्षेत्रीय प्रभाव को लंबे समय तक बनाएं नहीं रख सकता. उसे ऐसी कूटनीति अपनानी होगी जो सुरक्षा चिंताओं को कम करे, आर्थिक सहयोग के नए अवसर पैदा करे और क्षेत्रीय तनाव को नियंत्रित रखे. यदि मोजत्बा ख़ामेनेई खाड़ी देशों के साथ विश्वास का नया आधार तैयार करने में सफल होते है, तो ईरान अपनी क्षेत्रीय भूमिका को मजबूत बनाएं रख सकता है. लेकिन इस समय स्थितियां जटिल है और ईरान को इज़राइल, अमेरिका और खाड़ी देशों के संभावित रणनीतिक समन्वय जैसी कहीं अधिक जटिल चुनौती का सामना करना पड़ सकता है. ईरान के प्रतिद्वंद्वी देशों की निगाहें इसी संक्रमण काल पर टिकी होंगी. वे यह देखना चाहेंगे कि मोजतबा ख़ामेनेई के दौर में ईरान की निर्णय-क्षमता कमजोर पड़ती है या उसकी संस्थाएं पहले की तरह संगठित रहती हैं. यदि ईरान में आंतरिक मतभेद बढ़ते है, तो इजराइल और अमेरिका उस मौके को छोड़ने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखेंगे.

विदेश नीति में ख़ामेनेई का दृष्टिकोण स्पष्ट और दीर्घकालिक रहा. उन्होंने अमेरिका और इज़राइल के विरुद्ध कठोर नीति अपनाई तथा लेबनान, सीरिया, इराक और यमन में ईरान के प्रभाव को बढ़ाने का प्रयास किया. इस रणनीति ने ईरान को क्षेत्रीय शक्ति अवश्य बनाया, किन्तु इसके कारण पश्चिमी देशों के साथ टकराव भी बढ़ता गया. परमाणु कार्यक्रम के संदर्भ में भी ख़ामेनेई का रुख निर्णायक रहा. उन्होंने इसे राष्ट्रीय सम्मान और रणनीतिक सुरक्षा का विषय बताया. यद्यपि 2015 के परमाणु समझौते को उन्होंने स्वीकार किया, फिर भी पश्चिमी देशों के प्रति उनका अविश्वास कभी समाप्त नहीं हुआ. यदि ईरान ने अपनी सामरिक क्षमता विकसित नहीं की होती, तो वह बाहरी दबावों का सामना नहीं कर पाता.